© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

ऋग्वेदीय ऋषिकाओं के विचारों की वर्तमान में प्रासङ्गिकता

इन्दु डिमोलिया
शोधच्छात्रा, पीएच.डी.
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन संस्थान, जवाहरलाल नेहरू,
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

शोध आलेख सार– समाज के विभिन्न अनुत्पादक वर्गों में धन के वितरण की व्यवस्था ही दक्षिणा है। ऋग्वेद में दक्षिणा देने वाले दाताओं की संज्ञा 'भोज' है। ऐसे दानशील भोज दान से अमर हो जाते हैं। इस सुकृत के प्रतिफल स्वरूप उन्हें तीनों लोकों की श्रेष्ठ वस्तुयें प्राप्त होती हैं। दक्षिणा की महिमा को जानने वाले विद्वान् दक्षिणा का उपयोग दुष्कृत, पाप, अनिष्ट, अमंगल और मृत्यु से बचाने वाले कवच के रूप में करते हैं|

मुख्य शब्द – दुष्कृत, पाप, अनिष्ट, अमंगल, मृत्यु |

भारतीय संस्कृति के इतिहास में वेदों का स्थान नितान्त गौरवपूर्ण है। वेद शब्द विद् ज्ञाने से सिद्ध होता है। अत: वेद का अर्थ है ज्ञान। "वेद्यतेऽनेनेति वेद:" इससे सब-कुछ जाना जाता है, इसलिए इसे वेद कहते हैं। अथवा "वेदयति विश्वपदार्थान् अवगमयतीति वेद:" जो सब पदार्थों का ज्ञान कराता है, वह वेद है। पाणिनि ने तो वेद शब्द में चार धातुओं का प्रयोग किया है-

1. विद् ज्ञाने
2. विद् सत्तायाम्
3. विद् लृ लाभे एवं
4. विद् विचारणे।

सत्तायां विद्यते ज्ञाने विन्ते विचारणे।
विन्दते विन्तदति प्राप्तो श्यन्लुक्श्नम्शोष्विदं क्रमात्॥[1]

वेदों के महान् भाष्यकार सायणाचार्य के द्वारा तैत्तिरीयसंहिता के भाष्य की भूमिका में दी गई निम्नलिखित परिभाषा में कहा गया है कि जो ग्रन्थ इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट के परिहार के उपायों का ज्ञान कराता है, वह वेद है-

"इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोर् अलौकिकम् उपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेद:"[2]

ऋग्वेदचतुर्विध संहिताओं में सर्वाधिक गौरव से मण्डित है। ऋक् का अर्थ है- स्तुतिपरक मन्त्र **"ऋच्यते स्तूयतेऽनया इति ऋक्"** जिसके द्वारा देवता विशेष की स्तुति की जाती है उसे ऋक् कहा जाता है। जैमिनीय ने अपने मीमांसा ग्रन्थ में ऋक् को परिभाषित करते हुए कहा है कि- जिन मन्त्रों में अर्थवशात् पादो की व्यवस्था है उन छन्दोबद्ध मन्त्रों का नाम ही ऋचा या ऋक् है।[3] भाषा भाव और विशेष की दृष्टि से इसे सभी वेदों में प्राचीनतम घोषित किया गया है। जिसके मन्त्र अन्य संहिताओं में भी प्रयुक्त हुए है। समस्त वेदों में सहस्त्रशीर्ष यज्ञरुपी परमेश्वर से सर्वप्रथम ऋचाओं के आविर्भाव का उल्लेख मिलता है।[4] ऋग्वेद की महनीयता को वैदिक संहिताओं ने भी स्वीकार किया है। तैत्तिरीय संहिता का कथन है कि साम तथा यजुष के द्वारा किया गया विधान शिथिल होता है किन्तु ऋक् द्वारा विहित अनुष्ठान में दृढ़ता होती है।[5]

ऋग्वेद में लगभग 27 ऋषिकाओं का उल्लेख मिलता है तथा इनके द्वारा दृष्ट मन्त्रों की संख्या सैकड़ों है। इन स्त्री ऋषिकाओं द्वारा दृष्ट मंत्र अधिकांशत: दशम मण्डल में है। इनके नाम हैं- घोषा, गोधा, विश्वारा, अपाला, उपनिषद्, निषद्, ब्रह्मजाया (जुहू), अगस्त्य की भगिनी, अदिति, इन्द्राणी और इन्द्र की माता, सरमा, रोमशा, उर्वशी, लोपामुद्रा और नदियाँ, यमी, शश्वती, श्री, लाक्षा, सार्पराज्ञी, वाक्, श्रद्धा, मेधा, दक्षिणा, रात्री और सूर्या-सावित्री आदि सभी ब्रह्मवादिनी ऋषिकाएँ हैं,इनके नामोंकाउल्लेख बृहद् देवता के दूसरे अध्याय में इस प्रकारदियागया है-

घोषा गोधा विश्वारा, अपालोपनिषन्निषत्।

ब्रह्मजाया जुहूर्नाम अगस्त्यस्य स्वसादिति:॥84॥

इन्द्राणी चेन्द्रमाता च सरमा रोमशोर्वशी।

लोपामुद्रा च नद्यश्च यमी नारी च शश्वती॥85॥

श्रीर्लाक्षा सार्पराज्ञी वाक्श्रद्धा मेधा च दक्षिणा।

रात्री सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिन्य ईरिता:॥86॥

गोधा ऋषिका द्वारा लिखी गई ऋचाओं में हमें संयमी बनने की प्रेरणा मिलती है।

ऋग्वेद के दशम मण्डल, अध्याय 11, सूक्त 134 के पूर्वार्ध (1-5,6) के ऋषि मान्धाता यौवनाश्व: और उत्तरार्ध (3-6) की ऋषिका गोधा है।

दीर्घं ह्यङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि मन्तुम:।
पूर्वेण मघवन् पदाजो वयां यथा यमो
देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत्॥[6]

हे ज्ञानवान् परमेश्वर ! जिस प्रकार पीलवान् हाथी को सीधे मार्ग पर चलाने के लिये अपने हाथ में अंकुश को धारण करता है, उसी प्रकार तू इस जगत् के संचालन के लिये शक्ति को धारण करता है। जिस प्रकार बकरा पत्तों को खाने के लिए अपने अगले पाँवों से वृक्ष की शाखा को अपने वश में करता है, उसी प्रकार हे धनवान्! तू अपने पूर्वोक्त सामर्थ्य से इस जगत् को अपने नियन्त्रण में रखता है। कल्याणी देवी अदिति ने तुझको जना है। वस्तुत: तू स्वयं ही इन्द्र और स्वयं ही अदिति है। तू स्वयं ही माता और स्वयं ही पुत्र है। तू स्वयं से उत्पन्न होने वाला स्वयम्भू है।

नकिर् देवा मिनीमसि नकिर् आ योपयामसि मन्त्रश्रुत्यं चरामसि।
पक्षेभिर् अपिकक्षेभिर् अत्राभि सं रभामहे॥[7]

हे देवों ! हम कभी किसी प्रकार की हिंसा न करें अथवा हम तुम्हारे व्रतों को भङ्ग न करें। और हम कभी किसी को कर्तव्य अकर्तव्य के विषय में विमोह को प्राप्त न कराएँ, किंकर्तव्यविमूढ न बनाएँ। अथवा सत्यभाषण में असत्य का मिश्रण न करें। वेदमन्त्रों में जिस प्रकार के उपदेश का श्रवण हम अपने कानों से करते हैं, उसी प्रकार का हम आचरण भी करें। हम उपासक जन भुजाओं और भुजाओं के मध्य भागों से तुम्हारा आलिङ्गन करें, अर्थात् स्तुतियों और आहुतियों के द्वारा तुम्हें अपने वश में करें।

सार यह हैकिज्ञान की तरह संयम भी शक्ति प्रदान करता है। जैसे बानर अपने अगले पांव से शाखा को पकड़ कर पत्ते खाता है, वैसे ही मानव को प्रथम वय में ज्ञान और संयमरूपी पांवों द्वारा अपने जीवन को दृढ़ता से पकड़ कर, गृहस्थ को भोगना चाहिए। अपना जीवन मन्त्रों के अनुसार जीना चाहिए। उसमें न कुछ मिलाना चाहिए, नही कुछ घटाना चाहिए। क्योंकि वेदमाता सब के लिए केवल कल्याण चाहती है।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 126वें सूक्त के 7वें मन्त्र की 'रोमशा' ऋषिका युवती होते हुए भी पूर्ण यौवनाभिव्यक्ति को प्राप्त नहीं कर पाई थी, जिस कारण उसके पति उसे गृहस्थ धर्म के पालन योग्य

नहीं समझते थे। पति की इस उपेक्षा से व्यथित होकर रोमशा पत्नी अधिकारों को पाने के लिए लज्जा, संकोच को त्याग कर उच्चस्वर में अपने पति को कहती है कि

'मा मे दभ्राणि मन्यथा'[8]

मुझे छोटा मत समझना।

'अहमस्मि रोमशा'[9]

मैं रोमशा हूँ।

रोमशा ऋषिका की आत्मविश्वासपूर्ण अभिव्यक्ति वर्तमान समाज की महिलाओं के लिए एक हुंकार है कि समय आने पर लज्जा, भय, शर्म त्यागकर आत्मविश्वास के साथ अत्याचार का सामना करना चाहिए।

पति से प्रेम, सम्मान नारी का अधिकार है। पति का कर्तव्य है कि वह अपनी पत्नी से विभिन्न कार्यों में परामर्श ले तथा उसके विचारों का सम्मान करे।

ऋषिकालोपामुद्रा ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 179 वें सुक्त के प्रथम दो मन्त्रों की ऋषि है। इन मन्त्रों के माध्यम से ब्रह्मवादिनी लोपामुद्रा 'काम' को जीवन का एक बहुमूल्य अंग मान रही हैं, जिससे इस सृष्टि में वंशबीज फलता-फूलता है। इस 'काम' के उपभोग की आदर्श अवस्था यौवन है. जब शरीर सुन्दर एवं हृष्ट-पुष्ट रहता है।

इस सूक्त का वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाए तो यह कहा जा सकता है कि वर्तमान भाग-दौड़ भरी जिन्दगी में लोग बढ़ती जरूरतों के चलते समय पर विवाहादि नहीं कर पाते हैं। यौवनवय: चली जाने के पश्चात् सन्तानोत्पत्ति में बाधा आती है, यह वैज्ञानिक तर्क है। अत: यह सूक्त बताता है कि प्रत्येक कार्य करने की एक विशेष अवस्था है, उसका समयानुसार पालन किया जाना चाहिए, नहीं तो भविष्य में इसके दुष्प्रणाम झेलने पड़ सकते हैं।

ऋग्वेद के मण्डल तीन, सूक्त 33, मन्त्र 4,6,8,10 की अज्ञातनामा ऋषिका नदियाँ हैं। इस सूक्त में नदियों का सजीवीकरण करते हुए कहा है कि जल से परिपूर्ण नदियों की गति ही नदियों का जीवन है। नदियों पर बड़े-२ बाँध बनाकर मनुष्य सतत् प्रगतिशीलता के सिद्धान्त की अवहेलना तो कर ही रहा है, साथ ही साथ प्राकृतिक सम्पदाओं को नष्ट कर अपने ही हाथों से अपनी मौत को बुलावा दे रहा है। अत: सीमित संसाधनों में मनुष्य को खुश रहना चाहिए, लालची-स्वार्थी बनकर अपने लाभ के लिए प्रकृति को नुकसान नहीं पहुँचाना चाहिए।

ऋग्वेद का दक्षिणा सूक्त दान पर विशेष बल देता है। यद्यपि दक्षिणा पुरोहित को दिये जाने वाले दान की संज्ञा है तथापि इस सूक्त में दक्षिणा शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थों में हुआ है। दक्षिणा का आधार लोक कल्याण, समाजवाद या सामाजिक न्याय है जिसके अनुसार मानव मात्र को जीवन की आवश्यकताओं को पूर्ण करने और एक सुखी-सन्तुष्ट जीवन जीने का अधिकार है। सूर्य, जल और वायु जैसे किसी की व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं हैं उसी प्रकार पृथ्वी का धन भी किसी की निजी सम्पत्ति नहीं है। यदि कोई व्यक्ति अपनी प्रतिभा या कौशल से अधिक सम्पत्ति अर्जित करता है या समाज व्यवस्था के अन्तर्गत कृषि, वाणिज्य आदि वित्तीय साधनों का संचालक होता है तो उसका धर्म (कर्तव्य) है कि वह ऐसे लोगों में उस धन का वितरण करे जो धन के उत्पादक नहीं हैं। समाज के विभिन्न अनुत्पादक वर्गों में धन के वितरण की व्यवस्था ही दक्षिणा है। ऋग्वेद में दक्षिणा देने वाले दाताओं की संज्ञा 'भोज' है। ऐसे दानशील भोज दान से अमर हो जाते हैं। इस सुकृत के प्रतिफल स्वरूप उन्हें तीनों लोकों की श्रेष्ठ वस्तुयें प्राप्त होती हैं। दक्षिणा की महिमा को जानने वाले विद्वान् दक्षिणा का उपयोग दुष्कृत, पाप, अनिष्ट, अमंगल और मृत्यु से बचाने वाले कवच के रूप में करते हैं-

दक्षिणाश्वं दक्षिणा गां ददाति दक्षिणा चन्द्रमुत यद्धिरण्यम्।
दक्षिणान्नं वनुते यो न आत्मां दक्षिणां वर्म कृणुते विजानन्॥
न भोजा मर्मुर्न न्यर्थमीयुर्न रिष्यन्ति न व्यधन्ते ह भोजा:।
इदं यद्विश्वं भुवनं स्वश्चै तत् सर्वं दक्षिणैभ्यो ददाति॥[10]

वस्तुत: दक्षिणा लोकाराधना का माध्यम है।[11] यहाँ स्पष्ट तौर पर जीवन-निर्वाह के लिए सभी को मिल-बाँटकर वस्तुओं का उपभोग करने को कहा गया है, जो आज के समय में बहुत ही प्रासंगिक एवं जरूरी है। इस प्रकार ऋग्वेदीय ऋषिकाएँ साहसी, निडर, संयमी, विदूषी इत्यादि समस्त गुणों से युक्त थी। उनके ये अमूल्य विचार वर्तमान समय की महिलाओं को भी वैसा बनने के लिए प्रेरित करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ–

[1].सिद्धांत कौमुदी, चुरादिगण पृ०12
[2].तैत्तिरीय संहिता भाष्य भूमिका, 1/420
[3].तेषामृग् यत्रार्थ: वशेन पादव्यवस्था। जैमिनीय सूत्र 2/1/35

[4].तस्माद् यज्ञात्.....यजुस्तस्माद्जायत। ऋग्वेद 10/10/1

[5].यद् वै यज्ञस्य साम्नायजुषा क्रियते शिथिल तत यद् ऋचा तद् दृढ़म्। तै० सा० 6/5/10/3

[6].ऋग्वेद 10/134/6

[7].ऋग्वेद 10/134/7

[8].उपोप मे परामृश मा मे दभ्राणि मन्यथा।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविक॥ ऋग्वेद 10/126/7

[9].ऋग्वेद 10/126/7

[1]0.ऋग्वेद 10/107/7-8

[1]1.तमेव ऋषिं तमु…….य: प्रथमो दक्षिणया रराध। ऋग्वेद 10/107/6